Indian J. Soc. & Pol. 09 (02) : 99-102: 2022 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
First Published Online 31 JULY 2022 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

सहभागिता मूलक लोकतंत्र और भारत में विकेन्द्रीकरण की राजनीति

प्रभा सिंह[1], पंकज कुमार[2]

[1]शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0, भारत
[2]अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

शासन–सत्ता में जन साधारण की भागीदारी एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण दो स्तरों पर प्रतिबिंबित होना अनिवार्य है। राजनीतिक संस्थाओं प्रक्रियाओं के स्तर पर एवं वैयक्तिक–सामाजिक स्तर पर। संस्थाओं के स्तर पर यह विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, पुलिस प्रशासन इत्यादि संस्थाओं में भारतीय समाज के समावेशी प्रतिनिधित्व के रूप में होना चाहिए। साथ ही इसे प्रक्रिया के स्तर पर भी प्रभावी होना चाहिए। इससे तात्पर्य है कि प्रतिनिधित्व प्राप्त लोगों की निर्णय निर्माण प्रक्रिया में प्रभावशाली भूमिका होनी चाहिए। भारत विविधता के अति बाहुल्य का देश है। यहाँ वैयक्तिक स्तर पर भी राजनीतिक स्वातन्त्रय, विचार–अभिव्यक्ति की आजादी के साथ–साथ विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सम्मान की पारिस्थितिक आवश्यक है। समाज के अंतिम छोड़ के व्यक्ति को भी राजनीतिक–सामाजिक मुख्य धारा का हर वर्ग राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं में अपनी वास्तविक भूमिका नहीं निभा सकता है। इस प्रकार व्यक्ति समाज में अपनी बेहतर प्रस्थिति पाने के बाद ही राजनीतिक संस्थाओं में अपनी यथोचित भूमिका निभा सकता है। भारत में विकेन्द्रीकरण की भी संस्थाएँ विकसित हो रही है और साथ ही साथ जन– साधारण की समुचित भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए समाज के वंचित एवं गैर–जागरूक वर्गों को प्रकाश में लाने के विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं। भारत की विशाल जनसंख्या एवं विविधता के दृष्टिकोण से भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता के लिए राजनीति विकेन्द्रीकरण एवं भागीदारी की राजनीति सर्वाधिक व्यवहारिक संकल्पना है।

KEYWORDS *सहकारी लोकतंत्र, प्रशासन, विकेन्द्रीकरण, जनभागीदारी, पंचायती राज व्यवस्था, नगरीय स्थानीय निकाय, स्वशासन, संगठन, राजनीतिक समाजीकरण, सामाजिक समरसता, प्रतिनिधिक प्रशिक्षण*

प्राचीन यूनानी विचारक प्लेटो की मान्यता थी कि शासन एक कला है। अतः शासन–संचालन हेतु उन्हीं नागरिकों को आगे आना चाहिए जो इस कला में माहिर हों। मध्ययुगीन पश्चिमी विचारक थॉमस एक्विनास, अरस्तू और 'बाइबल' के विचारों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य उत्तम शासन व्यवस्था के निर्माण में सहयोग करना था। आधुनिक युग के शिशु के रूप में ख्यातिलब्ध राजनीतिक चिंतक निकोल मैक्यावेली ने शासन के बेहतर संचालन हेतु 'प्रिंस' को अत्यन्त शक्तिशाली एवं चतुर व्यक्ति के रूप में रेखांकित किया है। 19वीं उन्नीसवीं शताब्दी के महान चिंतक कार्ल मार्क्स ने अपनी विभिन्न रचनाओं में शासन सत्ता के अति विकेन्द्रीकृत स्वरूप (सर्वहारा वर्ग की सत्ता) का प्रतिपादन किया। संविदावादी विचारक थॉमस हॉब्स ने राज्य के स्वाभाविक संस्था होने का खण्डन करते हुए इसे पूर्णतः कृत्रिम संस्था मानते हुए शासन सत्ता का केन्द्रीकरण 'लेवियाथन' के हाथों में कर दिया जबकि रुसो ने सामान्य इच्छा के अनुरूप लोकप्रिय सम्प्रभुता की नींव रखी।

उपर्युक्त बिन्दुओं में एक बात सामान्य है। हर समय के विचारकों ने शासन सत्ता के स्वरुप का निर्धारण किया है। जाहिर सी बात है, सबके आकलन एक जैसे नहीं हैं किन्तु एक बात तय है कि 'जन सहभागिता' शासन सत्ता के केन्द्रीय तत्व के रूप में है। मोटे तौर पर इसे केन्द्रीकृत सत्ता एवं विकेन्द्रीकृत सत्ता के स्वरुप में विभाजित किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में भारत में जन भागीदारी एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है।

19वीं शताब्दी में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा अस्तित्व में आई। आधुनिक राज्यों के कार्यों में इस अवधारणा ने तीव्र वृद्धि किया। इसके परिणामस्वरूप विकेन्द्रीकरण को बल मिला। हालांकि विकेन्द्रीकरण कोई सर्वथा नवीन प्रत्यय नहीं है। विश्व की बहुत सी शासन व्यवस्थाओं में विकेन्द्रीकृत संस्थाओं का अस्तित्व प्राचीन काल से देखा जा रहा है। समय के साथ उनकी स्थिति भी मजबूत ही हुई है। अनेकानेक विद्वानों ने विकेन्द्रीकृत संस्थाओं को सशक्त बनाने के विभिन्न सुधारों को इंगित किया है। शासन तंत्र के सफल संचालन हेतु वस्तुतः विकेन्द्रीकृत संस्थाएँ एक आधार तत्व के रूप में कार्य करती है, जिस पर सुदृढ़ व जवाबदेह शासन प्रणाली का निर्माण होता है। भारत में विकेन्द्रीकरण की राजनीतिक अवस्था का निर्धारण मूल रूप से संविधान सभा के बहस–मुबाहिसे निर्धारित होकर सतत गतिमान है।

किसी भी लोकतंत्र की सफलता सत्ता में 'जन भागीदारी' पर निर्भर करती है। यह भारत जैसे विशाल विविधता वाले देश पर भी लागू होता है। 15 अगस्त 1947 को देश तमाम चुनौतियों के साथ आजादी प्राप्त करता है। इन्हीं चुनौतियों में से

1: Corresponding Author

एक चुनौती यह भी थी कि गैर–जागरूक एवं असाक्षर लोगों को कैसे राजनीतिक समाजीकरण की धारा में समाहित किया जाए? जनांकिकीय आंकड़े बेहद विषमता मूलक थे। अधिकांश भारतीयों की मनोदशा यही थी कि 'कोउ नृप होय हमें का हानी' (अर्थात राजव्यवस्था किसी की भी हो कैसी भी हो आम जनता बहुत तवज्जों नही देती थी) ऐसे में नागरिकों के मतदान व्यवहार से लेकर निर्णय–निर्माण तक की यात्रा अत्यन्त दुष्कर रही। आर्थिकी असमानता एवं सामाजिक वंचनाओं ने देश के बहुसंख्य लोगों के राजनीतिक विकास में अवरोधक साबित हो रहे थे। यही मूल वजह थी जिसने विकेन्द्रीकरण के मुद्दे पर गाँधी और अम्बेडकर के विचारों को परस्पर विरोधी कर दिया। जहाँ गाँधी ग्राम पंचायतों के माध्यम से भारत का विकास चाहते थे, वहीं अम्बेडकर को संशय था कि वर्तमान सामाजिक स्थिति में वंचित वर्ग स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली लोगों के दमन का शिकार होंगे यही कारण था कि 'पंचायतों' को संविधान के नीति निदेशक तत्वों के रूप में शामिल किया गया।

विकेन्द्रीकृत संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में भारतीय मनीषियों ने निर्णय निर्माण सम्बन्धी परिकल्पनाएं दी जिनके माध्यम से शासन–प्रशासन में जन–सहभागिता को विस्तार दिया जा सके। सरकार का प्रधान उद्देश्य जन साधारण के सर्वांगीण विकास लोकोन्मुखी उत्तरदायित्व व प्रशासनिक पारदर्शिता जैसी अवधारणाओं को बढ़ावा देना। 1950 के दशक से भारत में विकेन्द्रीकृत संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में नए–नए प्रतिमानों को लागू किया गया। समय के साथ–साथ इन संस्थाओं को सशक्त करने के उद्देश्य से विभिन्न समितियाँ गठित की गयी एवं उनकी सिफारिशों को लागू भी किया गया। सामाजिक न्याय की अवधारणा को वास्तविक स्वरुप प्रदान करने के लिए विकेन्द्रीकृत संस्थाएँ जिन उदात्त उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ी थी उनमें 'एकता' और 'विकास' दो सबसे अहम बिन्दु थे। ग्रामीण समाज की जिस एकता, सत्ता की भागीदारी, आत्मनिर्भरता एवं उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करने का प्रयास किया गया, विकेन्द्रीकृत संस्थाएं उसमें एक सीमा तक सफल रही है। वित्तीय आत्म निर्भरता के कारण आज विकेन्द्रीकरण की पद्धति स्थानीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। इस पद्धति के माध्यम से विकेन्द्रीकृत संस्थाओं को प्रदान किए गए अधिकारों के प्रयोग से धरातलीय विकास का स्वरुप लगातार बदल रहा है। विकेन्द्रीकृत संस्थाएं वस्तुतः धरातलीय लोकतंत्र की सूचक है।

21वीं शताब्दी में भी शासन के समक्ष ज्वलन्त विषय है कि सम्पूर्ण स्तरों पर विकेन्द्रीकरण किया जाए अथवा समय–परिस्थिति के अनुसार आंशिक रूप से इसे व्यवहारिक स्वरुप दिया जाए। एक ओर नियोजित अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय एकता की अपरिहार्यता एवं सशक्त व प्रभावशाली प्रतिरक्षा केन्द्रीकरण पर बल देता है। जबकि दूसरी ओर जन सहयोग से प्रजांतत्र की स्वस्थापना और क्षेत्रीय स्वायत्तता की निरन्तर उठती माँग विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त करती है। भारत एक कल्याणकारी राज्य भी है अतः इसके बढ़ते कार्यभार के कारण विकेन्द्रीकरण शासन संचालन की महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली प्रणाली बन गयी है। महात्मा गाँधी, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, जॉक दारिदा आदि बुद्धिजीवियों ने व्यवहार व दर्शन के आधार पर स्वीकार किया कि राष्ट्र, राज्य व प्रान्तों के स्तर से अलग हटकर जिला एवं ग्राम जैसे स्तरों को भी एक स्वशासी व विकेन्द्रीकृत इकाई के रूप में विकास–मार्ग के चयन की स्वायत्तता होनी चाहिए। यह स्वायत्तता उन्हें तभी मिल सकती है जब प्रशासन को विकेन्द्रीकृत किया जाए। यह तभी मुमकिन है जब इन छोटी–छोटी ग्रामीण एवं जिला स्तरीय इकाईयों को अपनी समस्याओं से सम्बन्धित नीति निर्धारण एवं निर्णय निर्माण की स्वायत्तता प्राप्त हो इसके अतिरिक्त इन इकाईयों को वित्तीय रूप से सशक्त बनाने की आवश्यकता है जिससे इनकी स्वीकार्यता एवं वैधता प्रभावशाली हो सके।

विकेन्द्रीकरण मूलतः एक सापेक्षिक अवधारणा है, अतः इसकी मात्रा भिन्न–भिन्न होना स्वाभाविक है। किसी संगठन या प्रशासनिक व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण को मापने के विभिन्न मापदण्ड हो सकते हैं। प्रशासन के विचारक अर्नेष्ट डैल ने अपनी पुस्तक 'प्लानिंग एण्ड कम्पनी ऑर्गेनाइजेशन स्ट्रक्चर' में विकेन्द्रीकरण को मापने के चार प्रमुख आधार बताए हैं। प्रथम, निर्णय की संख्या से विकेन्द्रीकरण को मापा जा सकता है। निचले स्तरों पर यदि अधिक निर्णय लेने का अधिकार है, जो इसका अभिप्राय अधिक विकेन्द्रीकरण से है। द्वितीय, 'निर्णयों का महत्व' दूसरा महत्वपूर्ण आधार है यदि अधिक महत्वपूर्ण निर्णय निचले स्तरों पर लिए जाते हैं तो इसका आशय होगा कि प्रशासकीय संस्था में विकेन्द्रीकरण की मात्रा अधिक है। उदाहरण के लिए यदि नगर पंचायतों को करोड़ों की पूँजी नियमन करने का अधिकार है और राज्य की स्वीकृति के बिना उसको व्यय करने का भी अधिकार हो तो विकेन्द्रीकरण का अच्छा उदाहरण माना जाएगा। तृतीय आधार निर्णयों के प्रभाव में निहित है। किसी प्रशासकीय संगठन या संस्थान में निम्न स्तर पर लिए जाने वाले निर्णयों से अधिकाधिक प्रभाव उस संस्था के कार्यों पर पड़ता है तो उसमें विकेन्द्रीकरण की मात्रा निश्चित रूप से अधिक होगी। चौथा आधार के रूप में 'निरीक्षण क्षमता' का उल्लेख किया डैल ने। निरीक्षण क्षमता किसी भी संगठन में निचले स्तरों की कार्यान्वयन क्षमता का निर्धारक होता है।

लोकतांत्रिक राजनीति में विकेन्द्रीकरण वह माध्यम है जो शासन को सामान्यजन के दरवाजे तक ले आता है। लोकतंत्र की अवधारणा को अधिक यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ एक ठोस कदम हैं क्योंकि स्थानीय लोगों की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रुचि बनी रहती है। ये लोग अपने स्थानीय स्तर पर नियामकीय तथा वैकासिक कार्यों का सम्पादन करने में सहायक सिद्ध होते हैं। अर्थात स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के माध्यम से लोगों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से शासन–प्रशासन का स्वतः प्रशिक्षण प्राप्त होता रहता है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर इन्हीं स्थानीय जन प्रतिनिधियों में से ही कई कालान्तर

में विधान मण्डलों एवं संसद में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं।

लोकतंत्र में भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय स्वशासन निकायों की अनिवार्य भूमिका है। भारत जैसे अत्यन्त विविधतापूर्ण देश में लोकतंत्र के वास्तविक परिणाम स्थानीय स्वशासन के द्वारा ही जनता के लिए प्राप्त हो सकते हैं। हैराल्ड जोसेफ लास्की के अनुसार ''हम लोकतंत्रीय शासन से पूरा लाभ उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम यह न मान ले कि सभी समस्याएँ केन्द्रीय समस्याएँ नहीं है और उन समस्याओं का समाधान उन्हीं स्थानों पर उन्हीं लोगों द्वारा किया जाना चाहिए जो उन समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।'' स्थानीय सरकार को व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में चिन्हित किया गया है। मनुष्य की सदैव यह इच्छा रही है कि जो भी शासन–सत्ता हो वह उसके स्वयं के द्वारा शासित व सुशासन का स्वरुप हो। व्यक्ति कभी यह पसंद करता कि उसके सार्वजनिक मामलों का निर्णय कोई और करें। मानव मन की यही इच्छा प्राचीन काल से स्थानीय निकायों के विकास का अंतर्निहित दर्शन रही है।

महात्मा गाँधी की मान्यता है कि 'लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साध्य के अनुरूप साधन होना चाहिए', इस आधार पर कहा जा सकता है कि प्रजातंत्र साध्य है जबकि विकेन्द्रीकरण उसे प्राप्त करने का साधन है। लोकतंत्र का वास्तविक सारतत्व यह है कि कमजोर से कमजोर व्यक्ति भी शासन सत्ता में अपनी भागीदारी महसूस करे। गाँधी जी लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण का आधार ग्रामीण समुदाय को मानते हैं। उनके अनुसार ''स्वराज की आधारशिला ग्रामीण समुदाय की राजनीतिक प्रक्रिया और अर्थव्यवस्था एवं भागीदारी पर निर्भर है। गाँधी के ग्रामीण सहभागिता पर ये विचार जहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष में देश की जनता को एकता के सूत्र में पिरोने में सफल रहे वही व्यवहारिक रूप से भारतीय संदर्भ में विकेन्द्रीकरण अत्यधिक वास्तविक व सफल विचार सिद्ध हुआ।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण की स्थिति लम्बे विकास का परिणाम है। संविधान के विकास के समय से ही विकेन्द्रीकरण का उल्लेख संविधान में शुरु हो गया था। लेकिन यह व्यवस्था ब्रिटिश काल से ही हुई मानी जाती है क्योंकि ब्रिटिश युग में ही 1909, 1919 व 1935 के अधिनियम संवैधानिक विकास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत बने। इन्हीं अधिनियमों में ब्रिटिश शासकों ने राज्यों को अधिकार देने की पहल की थी, हालांकि उसको यथोचित रूप संविधान निर्माण होने के बाद ही मिला। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मूलतः चार स्तरों पर विकेन्द्रीकरण देखा जाता है। प्रथम इकाई के रूप में राज्यों को अधिकार दिए गए हैं। द्वितीय स्तर जिला जबकि तृतीय स्तर पर खण्ड विकास क्षेत्र एवं चतुर्थ स्तर पर ग्राम पंचायत व ग्राम सचिवालय प्रणाली आती है। स्थानीय स्वशासन की ग्रामीण एवं शहरी इकाईयां वर्तमान दौर में सहभागिता मूलक एवं विकेन्द्रीकृत लोकतंत्र के सर्वाधिक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है।

लोकतंत्र में जनसाधारण की सहभागिता बढ़ाने एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को मजबूत प्रस्थिति में पहुँचाने के क्रम में भारत में संविधान का 73वॉ–74वॉ संशोधन निर्विवाद रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। संविधान के अनुच्छेद–40 में पंचायतों का उल्लेख नीति–निदेशक तत्व के रूप में किया गया जबकि अनुच्छेद–246 के माध्यम से स्थानीय स्वशासन से संबंधित किसी भी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार राज्य विधान मण्डलों को सौंपा गया। चूँकि नीति–निदेशक तत्व एक बाध्यकारी सिद्धान्त नहीं है, परिणामस्वरूप पूरे देश में इन निकायों के लिए सार्वभौम संरचना का प्रभाव रहा। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान में दो नए भागों–भाग प 'पंचायत' व भाग पप। 'नगरपालिकाएँ को जोड़ा गया लोकतांत्रिक प्रणाली की बुनियादी इकाईयों के रूप में ग्राम सभाओं (ग्राम) और वार्ड समितियों (नगरपालिका) को रखा गया जिनमें मतदाता के रूप में पंजीकृत सभी वयस्क सदस्य शामिल होते हैं। सभी स्तरों पर सदस्यों एवं अध्यक्षें के एक–तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर 'आधी आबादी' की सहभागिता भी सुनिश्चित की गयी।

आज देश में लगभग ढाई लाख पंचायती राज संस्थाएं एवं शहरी स्थानीय निकाय जबकि तीस लाख से अधिक निर्वाचित स्थानीय स्वशासन प्रतिनिधि मौजूद हैं। भारत में निर्वाचित पदों पर आसीन महिलाओं की संख्या में लगभग चौदह लाख (14 लाख) है जो विश्व में अन्यत्र कही नहीं है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए भी आरक्षण का प्रावधान कर सहभागिता मूलक विकेन्द्रीकरण की राजनीति को बढ़ावा दिया गया है। स्थानीय सरकारों में महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व से महिलाओं के आगे जाने और अपराधों की रिपोर्ट दर्ज कराने की संभावनाओं में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे राज्यों में दलितों एवं पिछड़ों को दिये गए आरक्षण ने उनकी सामाजिक प्रस्थिति को समृद्ध किया है, जिससे अब वो समाज व राजनीति की मुख्य धारा में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं।

भारत में विकेन्द्रीकरण की राजनीति एवं जन साधारण की राजनीति सहभागिता का सीधा सम्बन्ध पंचायती राज नगरीय निकायों से है। पंचायती राज संस्थाओं ने 28 वर्षों की अपनी यात्रा में उल्लेखनीय सफलता भी पाई है और भारी विफलता का भी सामना किया है। स्वशासी संस्थाएं जमीनी स्तर पर सरकार तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व के एक और स्तर के निर्माण में सफल रही है वहीं बेहतर प्रशासन प्रदान करने के मामले में वे विफल रही है। पंचायती राज व्यवस्था में जनसहभागिता के संदर्भ में जो सबसे भयाक्रांत करने वाली बात है वह है निर्वाचन की व्यावहारिक स्थिति। ग्राम पंचायतों के चुनाव में ग्रामीण, मतदाताओं के मतों को अवैध तरीके से 'खरीदा' जाता है। खण्ड पंचायतों एवं जिला पंचायतों के अध्यक्ष प्रत्याशी सदस्यों को विभिन्न प्रलोभनों से खरीदकर चुनाव जीतते हैं। यह सहभागिता–मूलक लोकतंत्र एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण के मार्ग में बड़ी बाधा है। आज स्थिति यह है कि जिनकी 'राजनीतिक

पकड़' मजबूत है, धन बल–बाहुबल में औरों से आगे हैं उसके चुनाव जीतने की सम्भावना सर्वाधिक है। इससे युवाओं एवं क्षमतावान लोगों के सत्ता में भागीदारी बनने के मार्ग अवरुद्ध हो जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त महिला प्रतिनिधियों की स्थिति भी चिंताजनक है। महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पिता–पति या पुत्रों द्वारा काम–काज किया जाता है। हालांकि व्यावहारिक तौर पर अभी भी महिलाएँ कम रुचि दिखा रही है, किन्तु उनका सहयोग पर उन्हें राजनीतिक रूप से सक्षम बनाने की आवश्यकता है। प्रॉक्सी प्रतिनिधि की समस्या को हल करने के लिए राजनीतिक सशक्तिकरण के साथ–साथ सामाजिक सशक्तिकरण के मार्ग का अनुसरण करना होगा।

भारत में सहभागितामूलक लोकतंत्र एवं विकेन्द्रीकरण की राजनीति एक समय साध्य प्रक्रिया है। इसकी तमाम आलोचनाएं है, किन्तु इन्हीं आलोचनाओं से ही एक बेहतर मार्ग भी प्रस्फुटित होगा। आजादी के बाद से अब तक निःसंदेह ही स्थितियां बेहतर हुई हैं। इसकी कमियों से सीख लेते हुए हम कालांतर में शासन–प्रशासन के हर स्तर पर शुचिता, पारदर्शिता एवं नैतिकता को बढ़ावा देंगे एवं जन साधारण विभिन्न सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सकेगी।

REFERENCES

शर्मा, डॉ0 एम0पी0 व बी0एल0 सदाना,(2000) *'लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार',* इलाहाबाद, किताब महल

कोठारी,रजनी 'पंचायती राज रि–असिस्मेंट', *इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली,* 13 मई, 1961

माहेश्वरी, एस0आर0 (1997), *भारत में स्थानीय शासन,* आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल,

तिलक,रघुकुल *'लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण',* लखनऊ, उत्तर प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

भारत का संविधान, 74वां संशोधन अधिनियम–1992

श्रीवास्तव, आशुतोष,, *'विकेन्द्रीकरण एवं पंचायतीराज व्यवस्था',* दिल्ली, सनराइज पब्लिकेशन्स

वर्मा, अशोक (1991), *भारत में स्थानीय प्रशासन,* जयपुर आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स,

गौर, पी0पी0 एवं आर0के0 मराठा (2001), *लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और ग्रामीण विकास* बीना, आदित्य पब्लिशर्स